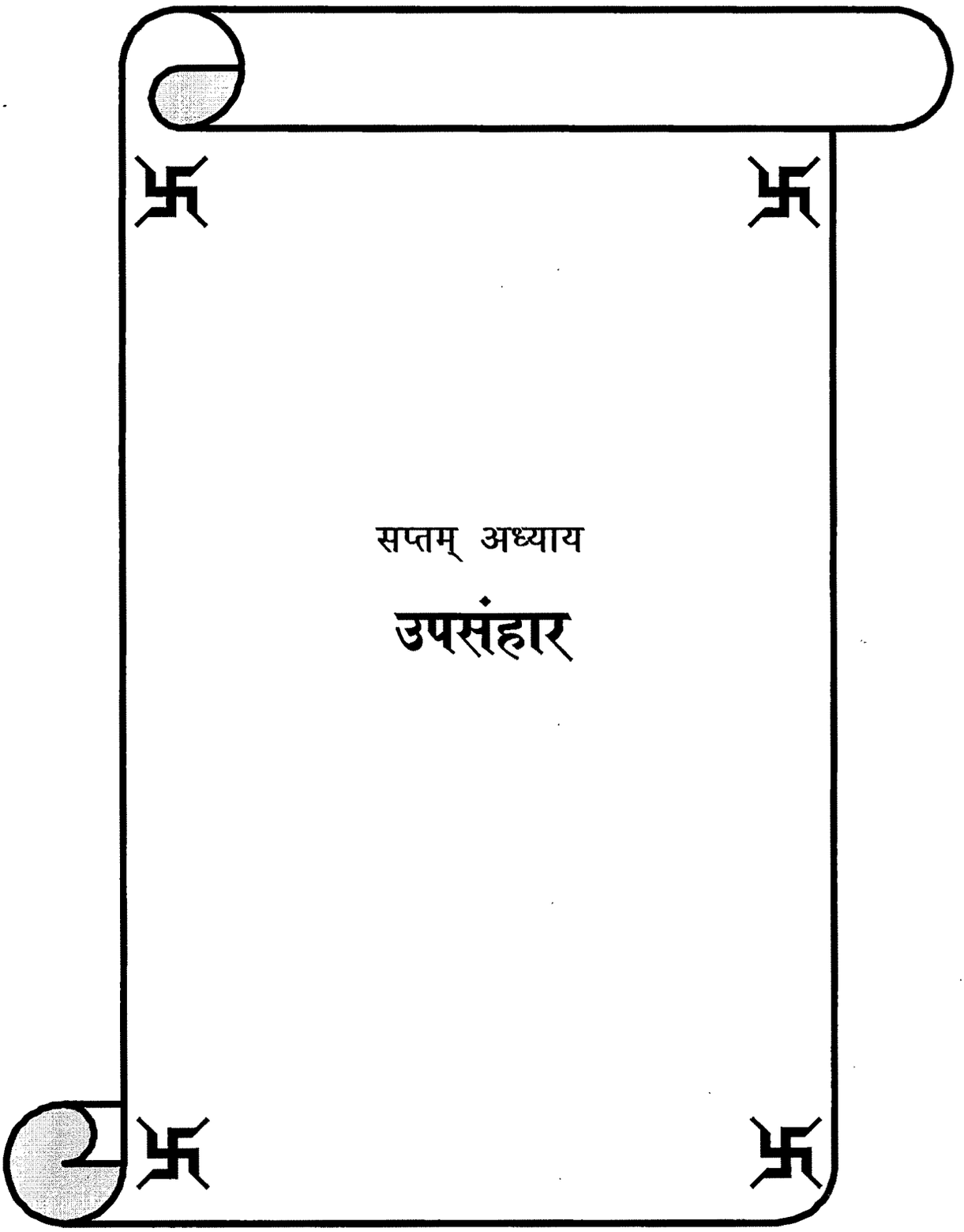

सप्तम् अध्याय

# उपसंहार

# उपसंहार

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। आदिमकाल से वह अपनी सहज जिज्ञासा प्रवृत्ति के कारण विश्व के रहस्यों को समझने का प्रयत्न करता आ रहा है। इन रहस्यों को सुलझाने का भी प्रयास करता आ रहा है। अपने अन्दर विद्यमान विवेकशीलता के फलस्वरूप मनुष्य स्वयं को, विश्व को तथा उसके पदार्थ के सम्बन्ध में जानने का प्रयास करता है। मनुष्य की जिज्ञासा अपने चारो ओर के प्रश्नों को जानने के लिए उत्प्रेरित करती है। उसके समक्ष उपस्थित होने वाले प्रश्न हैं – जगत् क्या है? चेतना क्या है? कर्म एवं पुनर्जन्म क्या है? ईश्वर क्या है? मोक्ष क्या है? आदि दर्शनशास्त्र इन समस्त प्रश्नों का उत्तर समुचित ढंग से देने का प्रयास करता है। इन प्रश्नों के समाधान के क्रम में दर्शन भावना एवं विश्वास की अपेक्षा बुद्धि को अंगीकार करता है।

भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों का वर्गीकरण दो भागों में किया जाता है – आस्तिक एवं नास्तिक। वेदों पर श्रद्धा रखने वाले या श्रुति को प्रमाण मानने वाले दर्शन आस्तिक दर्शन हैं। ईश्वर का अस्तित्व मानने न मानने से इसका सम्बन्ध नहीं है। वेदों को जो दर्शन अपना प्रमाण ग्रन्थ नहीं मानते, वे नास्तिक दर्शन हैं। आस्तिक और नास्तिक से ज्यादा अच्छा उनको

वैदिक दर्शन और अवैदिक दर्शन कहना उचित होगा। अतः आस्तिक दर्शन छः हैं – सांख्य दर्शन, योग दर्शन, न्याय दर्शन, वैशेषक दर्शन, पूर्वमीमांसा तथा उत्तर मीमांसा अथवा वेदान्त दर्शन, नास्तिक दर्शन तीन हैं – चार्वाक, जैन तथा बौद्ध। इन नौ दर्शनों में पुनः चार्वाक अपनी भौतिकवादिता के कारण शेष सभी दर्शनों से अलग पड़ जाता है। अतः अगर हम कहें कि भारतीय दर्शन पुनर्जन्म मानते हैं, तो इसका सन्दर्भ चार्वाक दर्शन को छोड़कर शेष आठ भारतीय दर्शनों से समझना होगा।

भारतीय दर्शनों में सबसे प्राचीन माना जाने वाला सांख्य दर्शन मुख्यतः वस्तुवाद एवं द्वैतवाद का प्रतिपादन करता है। यह प्रकृति एवं पुरुष दोनों को ही समान रूप से मूल तत्त्वों के रूप में स्वीकार करता है। समस्त जगत् इन्हीं दो का खेल है – प्रकृति भौतिक जगत् का मूल कारण है तथा यह विश्व का उपादान एवं निमित्त कारण दोनों ही है। यह सक्रिय एवं निरन्तर परिवर्तनशील है। प्रकृति अचेतन है। यहाँ पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि अचेतन तत्त्व से जगत् का विकास किस प्रकार होता है। जब शुरू में प्रकृति साम्यावस्था में रहती है, तो फिर इसमें गुण–क्षोभ क्यों होता है? इसके समाधान के लिए पुरुष का सहारा सांख्य लेता है। पुरुष चेतन, नित्य एवं अपरिणामी हैं। पुरुष के सम्पर्क में आने पर ही जड़ प्रकृति जगत् की सृष्टि करती है। पुनः पुरुष को निर्विकार कहा गया है तथा पुरुष का प्रतिबिम्ब जड़, बुद्धि पर पड़ने से ही ज्ञान आदि क्रियाओं की उत्पत्ति होती है। पुरुष के संसर्ग मात्र से ही प्रकृति में विकार क्यों उत्पन्न होता है? इसका स्पष्ट उत्तर सांख्य नहीं दे पाता है। सांख्य दर्शन में जीवों के जन्म एवं मरण

के आधार पर पुरुष की अनेकता को प्रमाणित किया गया है, लेकिन ये सभी तो शरीर के गुण हैं, न कि आत्मा के। इसके आधार पर पुरुष की अनेकता प्रमाणित नहीं होती है। इन त्रुटियों के बावजूद सांख्य दर्शन का महत्व कम नहीं होता है, दुःखों से निवृत्ति पाने के लिए यह मोक्ष मार्ग का दिग्दर्शन कराता है।

अद्वैत वेदान्त दर्शन में शंकर ने उपनिषद् के एकवादी प्रवृत्ति को अद्वैतवाद में रूपान्तरित किया है। शंकर ने केवल ब्रह्म को ही सत्य माना है तथा इसकी व्याख्या निषेधात्मक रूप में की है। उन्होंने यह भी बताया है कि ब्रह्म क्या है, बल्कि यह कहा है कि ब्रह्म क्या नहीं है। इसका आधार उपनिषद् नेति–नेति है। निषेधात्मक प्रवृत्ति के कारण शंकर ने ब्रह्म को एक कहने की अपेक्षा अद्वैत कहा है। शंकर दर्शन को अद्वैतवाद इस कारण से भी कहा गया है कि ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी सत्ता को वह सत्य नहीं मानता है। ब्रह्म ही पारमार्थिक दृष्टि से सत्य है। अद्वैतवादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप ही शंकर ने माया को भी असत्य मान लिया है। शंकर के अद्वैतवादी प्रवृत्ति की पुष्टि उसके आत्मा एवं ब्रह्म तथा ब्रह्म एवं जीव के सम्बन्ध की विवेचना से भी होती है, क्योंकि आत्मा एवं ब्रह्म तथा जीव एवं ब्रह्म एक है।

जगत् के सम्बन्ध में सांख्य दर्शन में सृष्टि को विभिन्न प्रकार से प्रकृति का रूपान्तर मात्र मानते हुए सृष्टिक्रम का निर्देश किया गया है। अव्यक्त से व्यक्त का आविर्भाव ही सृष्टि है तथा इस व्यक्त को पुनः अव्यक्त रूप होना ही उसका लय है। अद्वैत वेदान्त का जगत् के सम्बन्ध में माननाा

है कि जगत् मायावी ईश्वर का कौतुक मात्र है, जो अपनी क्रीड़ा के निमित्त इसकी रचना करता है। ब्रह्म निर्गुण और निर्विशेष होने से जगत् का कारण नहीं हो सकता।

अन्य भारतीय दर्शनों में चार्वाक के मत में जगत् भूतों के आकस्मिक संयोजन का परिणाम है। न्याय दर्शन के अनुसार, भौतिक जगत् चार प्रकार के परमाणुओं से बना है। परमाणुओं के संयोग से बनी हुई सभी वस्तुएँ, उनके गुण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध, जीव के शरीर, इन्द्रिय तथा उनके द्वारा जानने योग्य वस्तुओं के गुण में सभी भौतिक जगत् के अन्तर्गत ही रहते हैं। वैशेषिक दर्शन भी विश्व का निर्माण परमाणुओं से हुआ मानता है, जो सांख्य में चार हैं और जगत् का निर्माण इन्हीं चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। योग दर्शन का मानना है कि पुरुष एवं प्रकृति के संयोग से जगत् की सृष्टि होती है तथा दोनों के विच्छेद से प्रलय होती है। योग दर्शन भी पुरुष और प्रकृति के संयोग से जगत् की सृष्टि मानता है।

मीमांसा दर्शन में जगत् सम्बन्धी विचार प्रत्यक्ष ज्ञान की यथार्थता के आधार पर मीमांसा दर्शन जगत् एवं उसके समस्त विषयों को सत्य मानता है। विशिष्टाद्वैत दर्शन में जगत् को सत्य माना है। रामानुज सांख्य दर्शन की भाँति सत्यकार्यावाद में विश्वास करते हैं तथा कारण–कार्य के क्षेत्र में ब्रह्म परिणामवाद को स्वीकार करते हैं। इस मान्यता के अनुसार कारण का पूर्णरूपेण रूपान्तर कार्य–रूप में होता है। यह सृष्टि ईश्वर की शक्ति प्रकृति का परिणाम है। ईश्वर इस जगत् का कारण है, जो स्वयं कार्यरूप में परिणत हो जाता है तथा जिस प्रकार कारण सत्य है, उसी प्रकार जगत्

रूपी कार्य भी सत्य है। ईश्वर के समान ही जगत् भी सर्वथा सत्य है। रामानुज ने कहा है कि सृष्टि वास्तविक है तथा यह उतना ही सत्य है, जितना की ब्रह्म।

चेतना सम्बन्धी विचार सांख्य दर्शन में पुरुष को चेतन स्वीकार किया गया है तथा प्रकृति को अचेतन स्वीकार किया है। पुरुष को आत्मा मानते हुए सांख्य यह मानता है कि पुरुष अनेक है, जितने भी चेतन प्राणी हैं, वह पुरुष हैं। अद्वैत वेदान्त दर्शन में शंकराचार्य का मानना है कि ब्रह्म और आत्मा केवल अलग–अलग नाम है, सत्ता एक ही है। आत्मा सारभौम चैतन्य है। इसमें ईश्वर और जीव को भी शुद्ध–चैतन्य माना गया है।

न्याय दर्शन में चैतन्य मुक्त आत्मा को ही ईश्वर कहा गया है और न्याय वैशेषिक दोनों दर्शन चैतन्य को आत्मा का आगुन्तक गुण कहा है। जबकि सांख्य मत में चैतन्य आत्मा का स्वरूप है। अद्वैतवादी शंकर ने आत्मा को आनन्दमय कहा है, जबकि सांख्य इसे अस्वीकार करता है। वैशेषिक का मानना है कि आत्मा का जब शरीर और मानस से संयोग होता है तभी चैतन्य का गुण उत्पन्न होता है।

चेतना के सम्बन्ध में योग भी सांख्य के समान ही यह मानता है कि जीव स्वतन्त्र पुरुष या आत्मा है और जीव स्वभावतः शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। मीमांसा दर्शन मानता है कि आत्मा नित्य, शुद्ध और चैतन्य है और ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान के भेद से रहित है। विशिष्टता द्वैत मत में आत्मा केवल चैतन्य ही नहीं बल्कि ज्ञाता भी है। इसी प्रकार चेतना के सम्बन्ध में चार्वाक जहाँ आत्मा को चेतना से युक्त देह मानता है वही बौद्ध दर्शन आत्मा को क्षणिक

मानसिक अवस्थाओं की शृंखला मानता है।

कर्म एवं पुनर्जन्म के सम्बन्ध में सांख्य दर्शन का मानना है कि लिंग शरीर का पुनर्जन्म होता है और मुक्ति होने पर लिंग शरीर का नाश होता है। शंकराचार्य मुक्ति के दो प्रकार मानते है– जीवन युक्ति और विदेह मुक्ति। जिसमें जीवन मुक्ति का अर्थ है, इसी जीवन में मोक्ष की अवस्था प्राप्त कर लेना अर्थात् अद्वैत वेदान्त भी पुनर्जन्म को स्वीकार करता है।

जैन एवं बौद्ध दर्शन भी कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा प्रकट करते है। बौद्ध दर्शन तो कर्म के अनुसार ही पुनर्जन्म को मानता है। चार्वाक आत्मा को अनित्य मानता है। आत्मा की इस अनित्यता के कारण चार्वाक पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, स्वर्ग–नरक, कर्म–विपाक आदि सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करते। उनके मत में जीव की मृत्यु ही उसका मोक्ष है। मृत्यु ही एकमात्र अपवर्ग है, मृत्यु के बाद जीव का पुनर्भव नहीं होता।

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन में भी कर्म एवं पुनर्जन्म की विशद् व्याख्या है, उनका मानना है पुनर्जन्म और मोक्ष एक दूसरे से सम्बद्ध है, पुनर्जन्म का अत्यन्त या एकान्तिक अभाव ही मोक्ष है। इसकी स्पष्ट मान्यता है कि आत्मा नित्य है और मरण के उपरान्त पुनर्जन्म होता है। इसी प्रकार योग दर्शन, मीमांसा दर्शन और विशिष्टा द्वैत दर्शन भी कर्म एवं पुनर्जन्म की मान्यता को स्वीकार करते है। अतः भारतीय दर्शन में नास्तिक दर्शन के अतिरिक्त लगभग सभी दर्शनों में कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा पूर्णरूपेण विद्यमान है।

ईश्वर सम्बन्धी विचार में सांख्य दर्शन में कुछ मतभेद है कुछ विद्वान सांख्य दर्शन को ईश्वरवादी मानते है, कुछ इसे निरीश्वर वादी मानते है। सांख्य में ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं है, जिन सांख्याचार्यों ने ईश्वर को माना है, वे उनको उसी अर्थ में लेते हैं, जिस अर्थ में योग दर्शन ईश्वर का वर्णन करता है। ईश्वर एक विशेष पुरुष है, वह सर्वज्ञ और सर्वकर्ता है।

अद्वैत वेदान्त का मानना है कि निर्विशेष ब्रह्म जब माया के द्वारा अवछिन्न होने पर सविशेष या सगुण भाव को धारण करता है तब वह 'ईश्वर' कहलाता है। समस्त अज्ञानों से अविछिन्न चैतन्य 'ईश्वर' है, जो विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा लय का कारण है। जगत् की सृष्टि के लिए ईश्वर को किसी निमित्त की आवश्यकता नहीं होती है। केवल माया रूपी शक्ति से ही वह जगत् का निर्माण करता है। सृष्टि के लिए उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है क्योंकि वह तो पूर्णकाम है। सृष्टि ईश्वर का स्वभाव है, उसकी लीला हैं।

वेदों में ईश्वर सम्बन्धी धारणा के विविध रूप उपलब्ध होते हैं, जो वैदिक चिन्तन धारा के क्रमिक विकास के द्योतक है। इनमें हमे बहुदेव वाद, एकाधिदेव वाद, एकेश्वरवाद एवं अद्वैतवाद के रूप प्राप्त होते है। उपनिषदों में ब्रह्म का ईश्वरवादी स्वरूप प्राप्त होता है। वह सृष्टि का कर्ता, लोक का स्वामी, सर्वशक्तिमान तथा घट–घट व्यापी है। वह स्वतन्त्र अनादि स्वयंभू है। वह न तो किसी का कार्य है और नहीं कारण है। वह सबका एक मात्र धारक है। वह अन्तर्यामी है। उससे समस्त जगत् आपूरित है।

नास्तिक दर्शनों में ईश्वर का विचार करने पर यह दिखता है कि चार्वाक दर्शन पूर्णतः भौतिकवादी दर्शन है, वह ईश्वर, आत्मा, पाप, पुण्य, कर्म, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक आदि को नहीं मानता। वह सर्वशक्ति सम्पन्न राजा को ही ईश्वर मानता है, उसके अतिरिक्त कोई भी ईश्वर या देवता नहीं है। जैन एवं बौद्ध दर्शन में सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया है, परन्तु ईश्वरत्व की धारणा से ये दोनों ही धर्म बच नहीं सके। जैन धर्म में तीर्थकारों की पूजा, अर्चना भगवान के रूप में ही होती है। इसी प्रकार बुद्ध को भी भगवान माना जाता है। बुद्ध की भी पूजा होती है तथा उनकी आराधना सें कल्याण का होना माना जाता है। यद्यपि ये दोनों ही दर्शन निरीश्वरवादी है परन्तु पूजा–पाठ, आराधना, भक्तिभवना से परिपूर्ण धर्म है।

न्याय वैशेषिक दर्शन के अनुसार ईश्वर नित्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, धर्म व्यवस्थापक, कर्म फल दाता तथा सृष्टि का रचयिता है। वह विश्वकर्मा है। परमाणु जो सृष्टि के पूर्व निष्क्रिय रहते हैं उन्हें वह सक्रिय कर सृष्टि उत्पत्ति में प्रवृत्त कराता है। अतः वह संसार का निमित्त कारण है। ईश्वर अपने नित्य ज्ञान से संसार के सभी विषयों का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता है। वह सर्वज्ञ और पूर्ण है। योग शास्त्र में ईश्वर का महत्वपूर्ण स्थान है। योग दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व के स्वीकरण का स्पष्ट उल्लेख है। अन्य दर्शनों के समान योग में जगत् के सृष्टा तथा विश्व के नियन्ता के रूप में ईश्वर की कल्पना नहीं की गयी है। योग ईश्वर को जगत् का स्रष्टा अथवा विश्व का नियन्ता नहीं मानता। ईश्वर सृष्टि का स्रष्टा अथवा नियन्ता नहीं

अपितु निरपेक्ष द्रष्टा है। मीमांसा दर्शन के वृद्ध मीमांसकों में ईश्वर के अस्तित्व का तिरस्कार मिलता है, लेकिन परवर्ती शास्त्रकारों की प्रवृत्ति ईश्वरास्तित्व को मान्यता प्रदान करने की कोशिश दिखलाई पड़ती है। विशिष्टाद्वैत दर्शन में रामानुज का मानना है कि अन्तर्यामी रूप में ईश्वर जीवों के अन्तःकरण में निवास करता है। उनके समस्त कार्यों का नियमन करता है तथा योगियों के ध्यान में आता है। अर्चा रूप भगवान की उपास्य मूर्ति है, जिसे भक्त अपनी रूचि के अनुरूप निर्मित और प्रतिष्ठित करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय दर्शनों में ईश्वर सम्बन्धी अवधारणा भले ही अलग लगती है, लेकिन यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो नास्तिक दर्शन में चार्वाक दर्शन को छोड़कर ईश्वर की मान्यता सभी दर्शनों में विद्यमान रही है, इसी ईश्वर को वेदान्ती परब्रह्म, न्याय वैशेषिक ईश्वर, योग ईश्वर बौद्ध बुद्ध, जैनअर्हत्, शैव परमशिव, मीमांसक धर्म और शाक्त शक्ति के रूप में मानते हैं। विचार पद्धति में अन्तर अवश्य है, परन्तु सबका उद्देश्य एक ही है।

मोक्ष के विषय में सांख्य का मानना है, यद्यपि मोक्ष की अवस्था में दुःख त्रय का पूर्ण विनाश माना गया है तथापि वेदान्त के समान इस अवस्था में आनन्द का कोई स्थान नहीं है। सांख्य में जीवन का लक्ष्य आत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति मात्र है, वेदान्त के समान निरतिशय आनन्द की अनुभूति नहीं है। कैवल्य की अवस्था में यद्यपि सांख्याचार्य द्रष्टा अथवा चेतना की स्थिति स्वीकार करते हैं तथापि आनन्द का अभाव भी मानने के कारण उनके मोक्ष का स्वरूप वेदान्त से भिन्न है। वेदान्त की मुक्ति भावात्मक है और

सांख्य की मुक्ति अभवात्मक। मोक्ष की अवस्था को आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति मानने से सांख्य न्याय दर्शन के समान है, लेकिन दोनों दर्शनों में कैवल्य की अवस्था में पुरुष अपनी स्वाभाविक चेतना में स्थिर होकर एक द्रष्टा के समान प्रकृति को देखता रहता है। इस प्रकार सांख्य की मुक्ति न्याय से भिन्न एवं उच्चतर मानी जाती है।

अन्य भारतीय दर्शनों में मोक्ष सम्बन्धी विचार इस प्रकार है – वेदों एवं उपनिषदों में विदेह मुक्ति के साथ जीवन मुक्ति भी सुस्पष्ट रूप से प्रतिपादित है, मोक्ष साधन केवल ज्ञान है, आत्म ज्ञान या ब्रह्म ज्ञान ही मोक्ष है। नास्तिक दर्शन में मोक्ष विचार का खण्डन किया गया है।

बौद्ध दर्शन में निर्वाण को मोक्ष माना गया है और इसमें निर्वाण के दो भेद किये जाते हैं – उपाधि शेष निर्वाण और अनुपाधिशेष निर्वाण या क्रमशः निर्वाण और परिनिर्वाण। यह वर्गीकरण लगभग वैसा ही है, जैसा कि वैदिक दर्शनों में जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति का भेद है। जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिए त्रिरत्न–सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चरित्र तीनों के समन्वित रूप को स्वीकार किया गया है। किसी एक के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

न्याय और वैशेषिकों के अनुसार सभी प्रकार के दुःखों का हमेशा के लिए नाश हो जाना ही मोक्ष या उपवर्ग कहलाता है। यह दुःखों के आत्यन्तिक निवृत्ति की अवस्था है। ऐसा जन्म–मरण के चक्र के रुक जाने के परिणामस्वरूप सम्भव होता है। इनके अनुसार मोक्ष की अवस्था में दुःख के साथ–साथ सुखों काभी अभाव रहता है। मोक्ष की स्थिति सुख एवं दुःख

दोनों अतीत है।

योग दर्शन का मोक्ष सम्बन्धी विचार है कि अष्टांग मार्ग के अनुसरण से साधक समाहित चित्त होकर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त के निरुद्ध भूमि अथवा असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करता है, तब उसके समस्त क्लेश संस्कारों सहित दुग्ध बीज के समान निःशक्त हो जाते हैं। चित्त वृत्तियों के इस निरोध के उपरान्त योगी को चित्त वियोग होता है। इस वियोग की प्राप्ति होने पर पुरुष अपने को बुद्धि–सत्व से भिन्न समझता है, जिसे सत्व पुरुषान्य या ख्याति भी कहते हैं तथा अपने वास्तविक शुद्ध ज्योतिर्मय चित्तस्वरूप में सदा के लिए प्रतिष्ठित हो जाता है। यही पुरुष का मोक्ष है। प्रकृति के संयोग से विमुक्त होने के कारण पुरुष केवल भाव में प्रतिष्ठित होता है। अतः पुरुष की इस अवस्था को योग दर्शन में कैवल्य अथवा मोक्ष कहते हैं।

मीमांसा दर्शन के दोनों सम्प्रदाय प्रभाकर एवं कुमारिल के अनुसार आत्मा का स्वरूप लगभग वैसा ही है, जैसा न्याय वैशेषिक आत्मा का है। अतः मोक्ष की स्थिति एवं उसे प्राप्त करने के साधन भी लगभग वही हैं, जिन्हें नैयायिक स्वीकार करते हैं।

विशिष्टाद्वैत दर्शन में रामानुज ने जन्म–मृत्यु के चक्र से मुक्त होना ही मोक्ष है। भारतीय दर्शन के प्रायः सभी सम्प्रदायों में 'मोक्ष' पर विचार किया है। अन्य दर्शनों के समान ही रामानुज ने आत्म–तत्त्व के स्वरूप–बोध को मोक्ष माना है। सांसारिक आवागमन के चक्र की आत्यन्तिक समाप्ति ही मोक्ष है। संसार के सुख क्षणिक और नाशवान हैं। अतः उनसे अनासक्त

होकर ईश्वर की भक्ति में लीन होने से ही इस संसार से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन को समग्र रूप से देखें तो, चार्वाक दर्शन भौतिकवादी दर्शन है। तो स्वाभाविक है कि वह केवल प्रत्यक्ष अनुभव को ही मानेगा, अतः स्वर्ग–नरक, पाप–पुण्य, आत्मा, ईश्वर, मोक्ष आदि को नहीं मानेगा। सांख्य प्रकृति और पुरुष (जड़ और चेतन) को सृष्टि के अनादि द्रव्यों के रूप में मानते हैं, तो वे कहेंगे ही कि इन दोनों तत्त्वों को एक ही समझना गलत है। उनकी भिन्नता समझना ही मोक्षदायक ज्ञान है। ये कार्य–कारण मीमांसा भी इसी तरह की मानेंगें कि संसार की जड़ वस्तुओं के आदिकारण केरूप में प्रकृति का और चेतन वस्तुओं के आदिकारण के रूप में पुरुष का अस्तित्व सिद्ध होगा। परिणाम, कारण में पहले से ही अव्यक्त रूप में उपस्थित रहता हैं, नया नहीं होता। सांख्य ईश्वर के तत्त्व पर विश्वास नहीं करता, परन्तु न्याय दर्शन ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास करता है और ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करना है, तो वह कहता है कि कपड़ा धागों में पहले से ही नहीं होता, बुनकर जब उसे धागों को लेकर बनाता है, तब कपड़ा पहले–पहल अस्तित्व में आता है। ईश्वर भी विविध द्रव्यों के अणुओं को लेकर विश्व को निर्मित करता है। धागे अपने आप कपड़ा नहीं निर्माण कर सकते, इसी तरह विविध अणु अपने आप विश्व का निर्माण नहीं कर सकते। निमित्तकारण के रूप में ईश्वर की आवश्यकता है, तो न्याय दर्शन असत्यकार्यवाद मानेंगे। शंकराचार्य नित्य शुद्ध–बुद्ध मुक्तस्वभाव सच्चिदानन्द ब्रह्मन् के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, तो स्वाभाविक है कि सारे परिवर्तनशील

संसार को वे मिथ्या समझते हैं और परिणामवाद को नहीं मानकर विवर्तवाद को मानते हैं और भ्रम निराशरूपी ज्ञान को ही मोक्ष का साधन मानते हैं। रामानुज आदि आचार्य ब्रह्म को भी निर्गुण, निर्विशेष,निर्विकल्प नहीं मानते। हर समय ब्रह्म के साथ जीव और जगत् ये विशेषण जुड़े ही होते हैं, तो स्वाभाविक है कि उनकी निर्विकल्प प्रत्यक्ष की कल्पना शंकर के निर्विकल्प प्रत्यक्ष से भिन्न होगी। रामानुज का कारण–परिणाम सिद्धान्त भी और मोक्ष तथा उसके प्राप्ति के साधन शंकर से भिन्न होंगे। बौद्ध क्षणिकवाद को मानते हैं। हर चीज क्षणिक है तो फिर अपरिवर्तनशील आत्मा असम्भव, तो कारण–कार्य मीमांसा भी उनकी अलग और अविद्या की विषयवस्तु अलग और मोक्ष साधना भी अलग। इसी कारण न्याय अगर सत् कारण से असत्–कार्य की उत्पत्ति मानते हैं तो बौद्ध असत्कारण से सत्–कार्य की उत्पत्ति मानते हैं। शंकर अगर अनुभव की हर घटना को मिथ्या मानते हैं तो रामनुज भ्रम और स्वप्न को भी सत्य का दर्जा देते हैं। जैन दार्शनिक मानते हैं कि जीव मिथ्या ज्ञान, मिथ्या–दर्शन और मिथ्या–चरित्र के कारण बन्धन में पड़ता है, कर्म–पुद्गल के कण जीव में प्रवेश उसी तरह करते हैं, जिस तरह कि कोई विष शरीर में प्रवेश करता है, अतः सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र से ही मोक्ष सम्भव है, ज्ञान मात्र से नहीं।

अतः ये षड्दर्शन भारतवर्ष के दार्शनिक सम्प्रदाय हैं। ये न तो किसी एक की बुद्धि की उपज हैं और न किसी एक व्यक्ति के आविष्कार। उनके वास्तविक प्रवर्तक भी अज्ञात हैं और इस सम्बन्ध में अत्यन्त मतभेद भी है कि कब तक इनदर्शनों की रचना हुई, लेकिन इनके सिद्धान्तों में कोई

त्रुटि प्रतीत नहीं होती। वे सब मिलकर अन्तिम सत्ता की क्रमबद्ध व्याख्या करते हैं। वे परस्पर इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि एक की प्रतिज्ञा एवं विधि दूसरे पर आश्रित है। वे किसी भी प्रकार एक–दूसरे के विरोधी नहीं हैं, क्योंकि वे सब एक ही लक्ष्य के विभिन्न मार्ग हैं।